अमर उजाला

नई दिल्ली । बुधवार, 22 मई 2019

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

मानव सेवा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, साझा भलाई के लिए काम करना सबसे बड़ा पंथ है...
-वुडरो विल्सन

पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति

इस बार तेरह राज्यों में मतदान के मामले में महिलाओं ने पुरुषों को पीछे छोड़ा है। यह अच्छी बात है कि महिलाएं निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा बन रही हैं, लेकिन इसके सार्थक नतीजे तब मिलेंगे, जब उन्हें संसद और विधानसभा में एक तिहाई आरक्षण मिले।

महिलाओं की हिस्सेदारी

सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव में सर्वाधिक 90 करोड़ मतदाता तो थे ही, भीषण गर्मी और लंबी चली चुनाव प्रक्रिया के बावजूद करीब 66.7 फीसदी मतदाताओं ने मताधिकार का प्रयोग किया, जो देश में संसदीय प्रक्रिया शुरू होने के बाद लोकसभा चुनावों में सर्वाधिक मत प्रतिशत भी है। इस बार के चुनाव का एक अहम पहलू यह भी है कि 13 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग करने में अधिक उत्साह दिखाया। यदि इन राज्यों के आंकड़ों पर गौर करें, तो उत्तर भारत और दक्षिण भारत की राजनीति का भी फर्क सामने आता है। दक्षिणी राज्यों में से केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केंद्र शासित प्रदेश पुडुचेरी और लक्षद्वीप में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों से अधिक दर्ज किया गया। इसी तरह से मातृ सत्तात्मक समाज के रूप में जाने जाने वाले पूर्वोत्तर के चार राज्यों मणिपुर, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम में भी पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया। हैरत इस बात की है कि इतना जागरूक समाज होने के बावजूद 1971 में अस्तित्व में आए मिजोरम की एकमात्र सीट पर पहली बार एक महिला उम्मीदवार ने चुनाव लड़ने की हिम्मत दिखाई है! वहीं बिहार और उत्तराखंड ही दो ऐसे अन्य राज्य हैं, जहां पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाओं ने मताधिकार की ताकत को समझा। अपेक्षाकृत शिक्षित समझे जाने वाले महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे राज्यों में महिलाएं इस मामले में पीछे हैं। महिलाओं के इस बढ़ते उत्साह के बावजूद दरअसल असल सवाल संसद और विधानसभाओं में उनके प्रतिनिधित्व से जुड़ा है, जहां उनकी स्थिति आज भी अच्छी नहीं है। वास्तविकता यह है कि 2014 में पहली बार सर्वाधिक 61 महिलाएं चुनाव जीतकर लोकसभा पहुंची थीं, लेकिन कुल 543 सीटों के लिहाज से यह महज 11 फीसदी ही है। हालांकि ओडिशा में बीजू जनता दल और पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस ने पहली बार क्रमशः तैंतीस और चालीस फीसदी टिकटें महिलाओं को दी हैं, इसके बावजूद यह एक लंबी लड़ाई है। यह अच्छी बात है कि महिलाएं अधिक से अधिक संख्या में मतदान कर निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा बन रही हैं, लेकिन इसके सार्थक नतीजे तब मिलेंगे, जब उन्हें संसद और विधानसभाओं में एक तिहाई आरक्षण मिले।

रमजान में मां की याद

मेरी मां धर्मनिष्ठ महिला थीं। पर रोजा रखने, न रखने की आजादी को वह महत्व देती थीं। आज के धार्मिक व्यक्तियों में मैं सहिष्णुता का यह गुण नहीं देखती।

तस्लीमा नसरीन

मेरे घर में नमाज-रोजा को लेकर कोई बंदिश नहीं थी। मेरी मां रात को सोने से पहले घर के तमाम सदस्यों से पूछती थीं कि कल कौन-कौन रोजा रखेगा। घर के जो लोग रोजा रखते, भोर को सहरी खाने के लिए मां सिर्फ उन्हें ही उठातीं। साथ ही, इसका भी ध्यान रखतीं कि जो लोग रोजा नहीं रख रहे, उनकी नींद में कोई बाधा न आए। इसलिए वे सहरी के लिए जगाते हुए अपनी आवाज धीमी रखतीं।

नमाज के मामले में भी हमारे यहां ऐसा ही नियम था। जिसकी इच्छा होती, वह नमाज पढ़ता, जिसकी इच्छा नहीं होती, वह नहीं पढ़ता। लेकिन इस वजह से कोई किसी की निंदा नहीं करता था। मेरे घर का यह नियम लिखित या मौखिक नहीं, बल्कि सहज स्वाभाविक था। इफ्तार के समय मां सबको खाने के लिए बुलातीं। सब एक साथ खाने के लिए बैठते, तो मां सबकी थाली में एक ही तरह परोसतीं। उस समय वह रोजा रखने वालों और न रखने वालों में कोई भेद नहीं करती थीं। तब मैं समझ नहीं पाई थी। लेकिन आज समझ पाती हूं कि मेरा घर एक आदर्श घर था।

हमारे घर से मस्जिद की अजान सुनाई नहीं पड़ती थी। बीती सदी के छठे-सातवें, यहां तक कि आठवें दशक में भी बांग्लादेश में मस्जिदों की संख्या ज्यादा नहीं थी। लेकिन घर के जो लोग नमाज पढ़ते थे, उन्हें नमाज के समय को लेकर किसी किस्म की असुविधा नहीं होती थी। हमारे घर में दीवाल घड़ी थी। मेरी मां तो आंगन में धूप की जगह देखकर ही बता देती थीं कि नमाज का समय हुआ है या नहीं। *कुरान* में मैंने पढ़ा है, *ला इक्राहा फिद्दीन* / यानी धर्म में कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं है। मुझे लगता है, *कुरान* की सबसे कीमती आयत यही है। इस्लाम के जानकार इस आयत की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, इस्लाम का जोर-जबर्दस्ती, बल प्रयोग, अत्याचार और ध्वंसात्मक कार्रवाइयों से कोई संबंध नहीं है। ये सभी क्रियाकलाप इस्लाम-विरोधी हैं।

इस आयत को पूरी तरह मानने पर पृथ्वी को शांतिपूर्ण बनाना संभव है। मैं समझ नहीं पाती कि *कुरान* में लिखी गई बातों पर जो लोग गर्व करते हैं, वे इनके बारे में चर्चा क्यों नहीं करते। अल्लाह ने भी कहा है कि धर्म में कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं है। अल्लाह के बंदे अल्लाह के उपदेशों का पालन करेंगे, यही तो स्वाभाविक है। लेकिन वास्तव में हो क्या रहा है? संयुक्त अरब अमीरात ने एक नया कानून लागू किया है। इसके तहत रमजान के महीने में जो भी व्यक्ति बाहर कुछ खाएगा या पिएगा, उसे भारी जुर्माना अदा करने के साथ-साथ एक महीना जेल की सजा भी काटनी होगा। बांग्लादेश में रमजान के महीने में खाने-पीने की दुकानों को दिन में खोलने की इजाजत नहीं है। अगर कोई दुकान खोल भी लेता है, तो रोजेदार उन दुकानों में तोड़फोड़ मचाते हैं। क्या गैर मुस्लिमों को इस महीने घर के बाहर कहीं बैठकर पानी पीने की इजाजत नहीं होनी चाहिए? रमजान के महीने में हालत यह है कि बाहर कहीं किसी को भी पानी पीते देख लिया, तो जोर-जबर्दस्ती, बल प्रयोग और तोड़फोड़ के उदाहरण सामने आते हैं। रोजादारों को लगता है कि रमजान में कोई उनके सामने कुछ खा-पीकर उनका अपमान करता है। मैं तो अपनी रोजादार मां के सामने ही पेट भरकर खाती थी। मेरे पेट भरकर खाने पर उन्हें संतुष्टि मिलती थी, जैसी कि हर मां को मिलती है। मेरी मां को तो कभी ऐसा नहीं लगता था कि रोजे में उनके सामने खाकर मैं उनका अपमान करती हूं। मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा कि रोजा न रखने के कारण मेरी मां मुझसे असंतुष्ट हैं।

मेरी मां सिर्फ एक भद्र महिला ही नहीं थीं। वह एक धर्मनिष्ठ महिला भी थीं। लेकिन रोजा रखने और न रखने की आजादी को वह महत्व देती थीं। आजकल के धार्मिक व्यक्तियों में मैं सहिष्णुता का यह गुण प्रायः नहीं देखती। आज तो धार्मिक होने का मतलब असहिष्णुता और अराजकता ही रह गया है।

बांग्लादेश में रमजान के महीने में रात रहते ही लोगों को जगाने की कवायदें शुरू हो जाती हैं। इसमें उन लोगों की भी नींद टूट जाती है, जो सहरी नहीं खाते या रोजा नहीं रखते। मेरे कहने का मतलब यह है कि धार्मिक मान्यताओं में उदारता बरतने की जो गुंजाइश पहले थी, वह अब खत्म हो गई है। अजान के मामले में भी यही बात कही जा सकती है। जब लोगों के पास अलार्म वाली घड़ी नहीं थी, मोबाइल फोन नहीं था, तब सहरी के लिए मोहल्ले के लोगों द्वारा उठाने की प्रथा लाभदायक थी। लेकिन अब जब सहरी के वास्ते उठने के लिए तमाम तकनीकी उपकरण उपलब्ध हैं, तब भोर को ही लोगों को उठाने के लिए आवाजें लगाने का कोई औचित्य नहीं है।

चीन ने अपने यहां के मुस्लिम बाहुल्य वाले इलाकों में रोजा रखने पर प्रतिबंध लगा दिया है। हालांकि यह प्रतिबंध सरकारी कर्मचारी, कम्युनिस्ट पार्टी के नेता-कर्मचारी और छात्रों पर ही लागू है। बीजिंग शायद यह समझ बैठा है कि रोजा रखने से शरीर ठीक से काम नहीं करता, इसलिए उसने सरकारी कर्मचारियों के रोजा रखने पर बंदिश लगाई है। छात्रों पर भी इसी वजह से बंदिश लगी है। जबकि कम्युनिस्ट चूंकि खुद को नास्तिक मानते हैं, ऐसे में उन्हें धार्मिक मान्यताओं का पालन करने से रोका गया है। मैं हालांकि चीन के इस फैसले की विरोधी हूं, क्योंकि मैं यह नहीं मानती कि रोजा रखने से शरीर शिथिल हो जाता है। दुनिया भर में असंख्य मुस्लिम रोजा रखते हुए अपना कामकाज उसी कुशलता से निपटाते हैं।

रोजा को लेकर दो तरह के जो अतिरेक देखने में आ रहे हैं, वह मेरे लिए आश्चर्यजनक है। एक तरफ बांग्लादेश जैसा मुल्क है, जो रमजान के महीने में गैर मुस्लिमों के लिए उदारता नहीं दिखाता। दूसरी तरफ चीन है, जो कम्युनिज्म की आड़ में दूसरों की धार्मिक मान्यताओं को दबाता है। यहां मैं पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का जिक्र करना चाहूंगी, जो मुस्लिम न होने के बावजूद नमाज पढ़ती और रोजा रखती हैं। मैं जानती हूं कि ऐसा वह अपने राजनीतिक लाभ के लिए करती हैं, फिर भी मैं इसके लिए उनकी आलोचना नहीं करूंगी। मनुष्य को जिस तरह धर्म न मानने की आजादी होनी चाहिए, उसी तरह एक आदमी कई धर्म की मान्यताओं का पालन करे, इसकी आजादी भी उसे होनी चाहिए। पर एक बात मैं जरूर कहना चाहूंगी, इस्लाम अगर उदार नहीं होगा, तो उसका खामियाजा मुसलमानों को ही सबसे अधिक भुगतना पड़ेगा।

अंतर्ध्वनि

>> निर्मल वर्मा

देश से प्यार करने वाला ही आलोचना का अधिकारी है

देखा जाए तो यह 'विचार तत्व' ही है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन की विपन्नता और ऐतिहासिक दुर्घटनाओं के बावजूद इस देश को बचाए रखने में सफल हुआ है। देश-विभाजन से बड़ी भीषण दुर्घटना और क्या हो सकती थी? यदि गांधी जी के लिए यह उनके जीवन का सबसे मर्मांतक घाव था, तो इसलिए कि आज के अनेक राजनेताओं की तरह उनके लिए देश की भौगोलिक अखंडता सिर्फ एक संविधानिक बात नहीं थी, जहां सिर्फ देश की सीमाओं को सुरक्षित रखना महत्वपूर्ण हो। इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन सीमाओं के भीतर शताब्दियों से हमारे पुरखों-पूर्वजों ने एक-दूसरे के साथ अपने अनुभवों, स्मृतियों, स्वप्नों का साझा किया था-एक जीवित संग्रहालय- जिसमें कला, साहित्य और दर्शन की असाधारण रचनाएं सृजित हुई थीं।

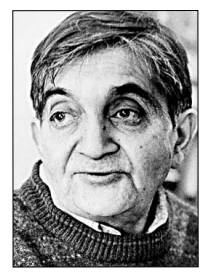

एक देश की पहचान सिर्फ उन लोगों से नहीं बनती, जो आज उसमें जीते हैं, बल्कि उनसे भी बनती है, जो एक समय में जीवित थे और आज उसकी मिट्टी के नीचे दबे हैं। समय के बीतने के साथ भूमि की भौगोलिक सीमाएं धीरे-धीरे संस्कृति के नक्शे में बदल जाती हैं। एक के खंडित होते ही दूसरे की गरिमा को भी चोट पहुंचती है। हमें कभी अपने सामाज की कुरीतियों, अपने सत्ताधारी नेताओं की स्वार्थ लिप्साओं को अपने देशप्रेम से गडमड नहीं करना चाहिए।

मेरे लिए मेरा देश, मेरे राजनीतिक, सैद्धांतिक आग्रहों से कहीं ऊपर है....या होना चाहिए। गांधी से बड़ा भारत-प्रेमी कौन हो सकता था, लेकिन वह भारतीय समाज के सबसे बड़े आलोचक भी थे-क्योंकि जो व्यक्ति हृदय से अपने देश से प्यार करता है, उसे ही आलोचना का अधिकार भी प्राप्त होता है।

-दिवंगत हिंदी साहित्यकार

मंजिलें और भी हैं

>> पी के मुरलीधरन

बोली सीखकर आदिवासी बच्चों को जोड़ा शिक्षा से

वर्ष 1999 में 29 वर्ष की उम्र में जब मैंने केरल के इडुक्की जिले की एक आदिवासी बस्ती नेमानल्कुडी के लिए रवाना हुआ, तो मुझे जरा भी अंदाजा नहीं था कि मेरी जिंदगी बदल जाएगी। मैं केरल के जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डीपीईपी) का स्वयंसेवक था, जिसका उद्देश्य राज्य भर के दूरस्थ जनजातीय इलाकों में मल्टी-ग्रेड लर्निंग सेंटर (एमजीएलसी) स्थापित करना था और उन्हें एकल-शिक्षक स्कूलों के रूप में चलाना था। यह आदिवासियों की 28 बस्तियों (जो पूरे वन क्षेत्र में बिखरी हुई थी) के बच्चों की शिक्षा जरूरतों को पूरा करने वाला था। उस समय, एकमात्र आदिवासी निम्न प्राथमिक स्कूल एडामालक्कुडी में था। नेमानल्कुडी में पांच से पंद्रह वर्ष की उम्र के 35 बच्चे थे, जिन्हें स्कूली शिक्षा का कोई अनुभव नहीं था। वहां कोई आधारभूत संरचना नहीं थी, बस एक छोटा-सा शेड था, जिसमें पहले अन्न रखा जाता था। स्कूल भवन का न होना ही एकमात्र समस्या नहीं थी, बल्कि शिक्षा सामग्री का भी अभाव था। शिक्षा विभाग ने एक ब्लैकबोर्ड के अलावा बच्चों के लिए न तो कॉपियां दीं और न ही स्लेट। बच्चों के पास पहने हुए कपड़ों के अलावा कोई कपड़ा भी नहीं था। स्वच्छता की कमी थी। मुथवन समुदाय के बच्चे शुरू से ही जंगल में घूमने-फिरने के अभ्यस्त होते हैं, इसलिए वे बंद कमरे में बैठना नहीं चाहते थे। वे जो बोली बोलते थे, मैंने पहले कभी वह बोली सुनी नहीं थी। वहां मात्र कुछ वयस्क पुरुष मलयालम समझ सकते थे। शुरू में उन्हें मलयालम सिखाने के बजाय मैं उन्हें स्वच्छता और स्वस्थ जीवन शैली का पाठ पढ़ाने लगा। इसी तरह शुरुआती कुछ महीने बीते। धीरे-धीरे मैं उनकी बोली समझने लगा और बच्चों को मलयालम से परिचित कराने लगा। शुरू में मैंने उन्हें गीत-गाने सिखाए और उनके साथ स्वयं भी गाता था। जब मैं सकारात्मक बदलाव की उम्मीद करने लगा, तो अचानक पाया कि स्कूल आने वाले बच्चों की संख्या घटते-घटते तीन रह गई है। तीन दिनों की जांच के बाद बता चला कि पूरा समुदाय वजाकुथु नामक एक उरू (आदिवासी बस्ती) में चला गया है, जहां इलायची की खेती चल रही थी। यह जानकर कि वजाकुथु उनकी आजीविका के लिए बेहतर क्षेत्र था, मैंने वहीं रुककर अपनी भूमिका निभाने का फैसला किया और 55 बच्चों को पढ़ाने लगा। एक छोटे से घर में कक्षाएं आयोजित होने लगीं। उनकी जरूरतों के हिसाब से मैंने अपनी शिक्षण शैली में जरूरी बदलाव किया। जैसे वे बंद कमरे के बजाय खुले में पढ़ना चाहते थे, तो मैं खुले में ही उन्हें पढ़ाता था। मैंने अपनी जेब से पैसे खर्च कर बच्चों को शिक्षण सामग्री दी। धीरे-धीरे मैंने बच्चों को लिखना भी सिखाया और खुद तीन साल बीतते-बीतते मुथवन बोली सीख गया। इससे मुझे महिलाओं से बातचीत करने में मदद मिली। मैं उन्हें शिक्षा के महत्व के बारे में बताता था। वर्ष 2011 में मैंने वयस्क साक्षरता अभियान चलाया और वयस्कों को पढ़ना-लिखना सिखाने लगा। उनके बीच रहते हुए मैंने दो किताबें भी लिखीं, जिनमे मुथवन का इतिहास दर्ज है। 2017 में, मैंने और अन्य शिक्षकों ने मिलकर एससीईआरटी (केरल) के समर्थन से एडामालक्कुडी में पांच एकल शिक्षक स्कूलों का एक समूह बनाया और चार शिक्षक मिलकर बच्चों को पढ़ाने लगे। बाद में स्थानीय निकाय ने स्कूल को अपग्रेड करने के लिए धन भी आवंटित किया। उन पैसों से हमने बच्चों के लिए कुर्सी, डेस्क, कंप्यूटर, प्रोजेक्टर और अन्य जरूरी सामान खरीदे। स्कूल में आज पुस्तकालय भी है।

आदिवासी बच्चों की जरूरत के हिसाब से मैंने अपनी शिक्षण शैली में जरूरी बदलाव किया।

-विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

भोजन से जुड़ा जैव विविधता का संकट

दुनिया में हर वर्ष एक लाख 15 हजार वर्ग किलोमीटर जंगल विकास की भेंट चढ़ जाते हैं और जब भी ऐसा होता है, तो अन्य वन्य जीव व प्रजातियां भी इसकी चपेट में आ जाती हैं। और इतना ही नहीं, वनीकरण इसकी पूरी भरपाई नहीं कर पाता।

इस बार के अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता दिवस की थीम एक ऐसे विषय पर केंद्रित है, जिससे आज जीवन और प्रकृति को समझने-समझाने में सहायता मिल सकती है। जीवन को दो तरह से देखा जाता है, आवश्यकताएं व सुविधाएं। इन दोनों में ज्यादा महत्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं, जिसमें पानी, भोजन, हवा आती हैं और दूसरा हिस्सा सुविधाओं से जुड़ी जीवनशैली है। हमारी सोच आज दूसरे पहलू पर ज्यादा केंद्रित है और यही कारण है कि हवा, मिट्टी और पानी की अनदेखी सवाल खड़े करने लगी है। जीवन के दोनों पहलू अंततः जैव विविधता से जुड़े हैं। मसलन, तमाम तरह के कृषि उत्पाद, फसलें, फल, जड़ी-बूटी ये सब जैव विविधता के प्रताप से हैं। गहराई में जाएं, तो विलासिता के आधार भी जैव विविधता से जुड़े मिलेंगे। पर पेट के सवाल बड़े हैं और उसी से स्वास्थ्य भी जुड़ा है और इन दोनों का आधार जैव विविधता है। उदाहरण के लिए, अगर दुनिया की 90 फीसदी जैव विविधताएं पिछले 100 वर्षों में किसान के खेतों से गायब होती जा रही हों और दूसरी तरफ पालतू जानवरों की आधी से ज्यादा नस्लें खत्म हो चुकी हों, तो यह समझने के लिए काफी है कि 'ऑल इज नॉट वेल'।

थाली से गायब होते खाद्य पदार्थों की विविधता हमारी शारीरिक आवश्यकताओं को गड़बड़ा सकती है। ग्लोबलाइजेशन, मुक्त आर्थिकी व व्यापार का एक कड़वा हिस्सा यह भी है कि हमने स्थान विशेष के भोजन व आवश्यकताओं को दरकिनार कर दिया है और इसीलिए स्वास्थ्य संबंधी संकट के सवाल भी खड़े हुए हैं। भोजन का बदलाव निश्चित रूप से

अनिल प्रकाश जोशी

प्रतिकूल असर डालता ही है। जिस तरह से दुनिया में जैव विविधता बड़े संकटों से गुजर रही है, तो तय मानिए कि हम अपने भोजन व स्वास्थ्य को भी तेजी से खो रहे हैं। जैव विविधता को नापने के तीन तरीके हैं, आनुवंशिक विविधता, प्रजातीय विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र विविधता। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि गेहूं-धान आनुवंशिक विविधता का हिस्सा हैं, और उनकी विभिन्न प्रजातियां प्रजातीय विविधता का हिस्सा हैं। पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता क्षेत्र विशेष की पारिस्थितिकी पर निर्भर करती है। पिछले 100-150 वर्षों में हमने लगातार जैव विविधता खोई है और एक अध्ययन के अनुसार यदि पर्यावरण क्षति की गति यही रही, तो 25-50 फीसदी प्रजातियों को हम सदी के अंत तक खो देंगे।

विकास विनाशकारी साबित हो रहा है। दुनिया में हर वर्ष एक लाख 15 हजार वर्ग किलोमीटर जंगल विकास की भेंट चढ़ जाते हैं और जब भी ऐसा होता है, तो अन्य वन्य जीव व प्रजातियां भी इसकी चपेट में आ जाती हैं। और इतना ही नहीं, वनीकरण इसकी पूरी भरपाई नहीं कर पाता। पारिस्थितिकी तंत्र मात्र वन ही नहीं, बल्कि छोटी वनस्पति प्रजातियों, जीव जंतुओं, कीड़े-मकौड़ों, बैक्टीरिया व वायरस का एक सामाजिक तंत्र है। इस तंत्र में सबसे घातक भूमिका मनुष्य की ही रही, जिसने अपने लालच व विलासिता के लिए सबकी बलि चढ़ा दी और यह सब कुछ विकास की आड़ में तय किया गया। इस सोच के पीछे एक बड़ा कारण शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति और भोगवादी सभ्यता रही है। साथ में पश्चिमी विकास का मॉडल जीवनशैली का मूलमंत्र बन गया। जैव विविधता हमारे लिए मात्र शब्दों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इसका मतलब पूरे उस तंत्र से है, जिसमें मनुष्य भी एक हिस्सा है। हमारे चारों तरफ प्रकृति के उत्पाद हवा, मिट्टी और पानी व उनसे उत्पादित भोजन जैव विविधता की ही देन हैं। मसलन वनों से मिट्टी, हवा, पानी मिलता है, तो नदी, कुएं और तालाब भी इन वनों से ही जुड़े हैं। बिगड़ती हवा की रोकथाम भी वनों से ही संभव है।

खुली खिड़की

अपर्याप्त एटीएम

बैंकिंग क्षेत्र में प्रौद्योगिकी को अपनाने से लोगों को काफी सुविधाएं मिलने लगी हैं। लेकिन प्रति लाख लोगों की आबादी पर जहां दक्षिण कोरिया में एटीएम की संख्या सबसे ज्यादा 271 है, वहीं अपने देश में उसकी संख्या मात्र 22 है।

स्रोत : World Bank

हरियाली और रास्ता

गुलाब, कैक्टस और पानी

गुलाब की कहानी, जिसे समझ में आया कि खूबसूरती की तुलना में गुण ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

बाग में एक गुलाब का फूल खिला, उसे देख सभी पेड़-पौधे मुस्कराने लगे। जैसे-जैसे गुलाब बड़ा हो रहा था, वैसे-वैसे सभी पेड़-पौधे उसकी खूबसूरती से मंत्रमुग्ध हो रहे थे। देवदार का पेड़ बोला, काश, हम भी गुलाब जैसे खूबसूरत होते। बगल में खड़े दूसरे पेड़ ने कहा, दिल क्यों छोटा करते हो दोस्त। हम सब भी तो सुंदर हैं। ताड़ ने कहा, मुझे नहीं लगता कि बाग में गुलाब से खूबसूरत कोई पेड़ होगा। सूरजमुखी ने कहा, क्यों, क्या मैं सुंदर नहीं? हम सभी खूबसूरत हैं, खुद पर भरोसा रखो। उधर गुलाब का अहं बढ़ता जा रहा था। थोड़ी ही दूर एक कैक्टस का पेड़ लगा था। अहंकारी गुलाब ने तय किया कि वह अपनी जगह बदल लेगा। सारे पेड़ इसकी वजह पूछने लगे। गुलाब बोला, मुझ जैसे खूबसूरत फूल के पास यह कटीला कैक्टस कैसे रह सकता है? बरगद ने गुलाब को समझाया, बेटे, तुम्हारी खूबसूरती तभी तक है, जब तक तुम अन्य गुलाब के पौधों के साथ नहीं हो। पर गुलाब ने किसी की नहीं सुनी और कैक्टस से दूर चला गया। हर दिन वह कैक्टस को खूब कोसता।

गर्मी चरम पर पहुंच गई थी। बारिश का नाम-ओ-निशान नहीं था। पेड़-पौधे पानी की किल्लत से मुरझाने लगे। गुलाब ने देखा, कुछ गौरैया कैक्टस में अपनी चोंच घुसातीं और भाग जातीं। गुलाब हैरत में था कि गौरैया ऐसा क्यों कर रही हैं। तभी बगल के एक पौधे ने बताया, कैक्टस में पानी का भंडार होता है। गौरैया चोंच से कैक्टस के अंदर का पानी पी रही हैं। गुलाब की आंखें खुल गईं। वह बोला, पर कैक्टस में तो कांटे होते हैं। पौधा बोला, हां, पर वह गौरैया के लिए अपने कांटे गिरा देता है। गुलाब को अपनी भूल समझ में आ गई। अगर वह इस वक्त कैक्टस के बगल में होता, तो वह भी कैक्टस की मदद से ज्यादा समय तक जीवित रह सकता था।

अपने अहंकार की वजह से कई बार हम दूसरों की अच्छाई देखना ही नहीं चाहते।

संतों की परीक्षा

महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर नामदेव तथा मुक्ताबाई के साथ तीर्थाटन करते हुए प्रसिद्ध संत गोरा के यहां पधारे। संत समागम हुआ, वार्ता चली। तपस्विनी मुक्ताबाई ने पास रखे एक डंडे को लक्ष्य कर संत गोरा से पूछा, यह क्या है? संत गोरा मिट्टी के बर्तन बनाते थे। उन्होंने उत्तर दिया, मैं इससे ठोककर अपने घड़ों की परीक्षा करता हूं कि वे पक गए हैं या कच्चे ही रह गए हैं। मुक्ताबाई हंसते हुए बोलीं, हम भी तो मिट्टी के ही पात्र हैं। क्या इससे हमारी परीक्षा कर सकते हो? 'क्यों नहीं' कहकर गोरा उठे और वहां उपस्थित प्रत्येक महात्मा का मस्तक उस डंडे से ठोकने लगे। उनमें से कुछ ने इसे विनोद माना, कुछ को रहस्य प्रतीत हुआ। किंतु नामदेव को बुरा लगा कि एक कुम्हार उन जैसे संतों की एक डंडे से परीक्षा कर रहा है। उनके चेहरे पर क्रोध की झलक दिखाई दी। जब उनकी बारी आई, तो गोरा ने उनके मस्तक पर डंडा रखा और बोले, 'यह बर्तन कच्चा है।' फिर नामदेव से आत्मीय स्वर में बोले, 'तपस्वी श्रेष्ठ, आप निश्चय ही संत हैं, किंतु आपके हृदय का अहंकाररूपी सर्प अभी मरा नहीं है, तभी तो मान-अपमान की ओर आपका ध्यान तुरंत चला जाता है। यह सर्प तभी मरेगा, जब कोई सद्गुरु आपका मार्गदर्शन करेगा।' संत नामदेव को बोध हुआ। अपने स्वयंस्फूर्त ज्ञान में त्रुटि देख उन्होंने संत विठोबा से दीक्षा ली, जिससे अंत में उनके भीतर का अहंकार छूट गया।

सत्संग

-संकलित